Dr. Sudhir Kumar singh

Principal

Rohtas Mahila College

Sasaram

Subject- Sociology

U. G. Notes

Paper 1st - Samajshaastra k siddhant

Topic- 1.सामाजिक समूह की परिभाषा एवं विशेषताएँ

2.प्राथमिक समूह का अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण

3.द्वितीयक समूह का अर्थ एवं परिभाषा

4.संदर्भ समूह एवं अर्थ

सामाजिक समूह की अवधारणा का अंतर हमें इससे मिलती-जुलती दो और धारणाओं से करना चाहिए। ये धारणाएँ है : (1) समुच्चय, और (2) सामाजिक कोटियाँ। समुच्चय और सामाजिक कोटियाँ निश्चित रूप से व्यक्तियों का जोड़ है।

सामाजिक समूह की परिभाषा

सामाजिक समूह न तो अनेक व्यक्तियों का समुच्चय है और न ही यह एक सामाजिक कोटि है। विभिन्न विद्वानों ने समूह को पारिभाषित किया है। सभी इस तथ्य को स्वीकार करते है कि समूह में सम्मिलित लोगों के बीच में पारस्परिक सम्पर्क होता है और यह सम्पर्क हमेशा बना रहता है, एक-दो दिन तक नहीं। वास्तविकता यह है कि समूह के सदस्यों की अन्त:क्रियाएँ नियमित रूप से होती रहती है। नियमित रूप से होने वाली अन्त:क्रिया ही व्यक्तियों को समूह का सदस्य बनाती है। एन्थोनी गिडेन्स ने सामाजिक समूह की परिभाषा इस भाँति की है :

सामाजिक समूह केवल व्यक्तियों का एक योग है जो नियमित रूप से एक दूसरे के साथ अन्त:क्रिया करते है। इस तरह की नियमित अन्त:क्रियाएँ समूह के सदस्यों को एक निश्चित इकाई का रूप देती है। इन सदस्यों की पूर्ण रूप से सामाजिक पहचान अपने समूह से ही होती है। आकार की दृष्टि से समूह में विभिन्नत आती है। समूह का आकार बहुत निकट सम्बन्धों जैसे परिवार से लेकर विशाल समष्टि जैसे रोटेरी क्लब तक होता है।

ऐमोरी बोगार्डस ने पाँचवे दशक के प्रारंम्भ में समाजशास्त्र की एक पाठ्यपुस्तक लिखी थी। उनका कहना है कि बहुत थोड़े में या सार रूप में समाजशास्त्र और कुछ न होकर समूह का अध्ययन मात्र है। उन्होंने समूह की व्याख्या वृहत् रूप में की है। उन्होंने समूह का सम्बन्ध संस्कृति, परिवार, समुदाय, व्यवसाय, खेलकूद, शिक्षा, धर्म, प्रजाति और संसार तक के साथ जोड़ा है। उनके अनुसार, ये सब समाज के अंग अपने आप में समूह है। उनकी दृष्टि में विभिन्न प्रजातियाँ इसी भाँति समूह और यहाँ तक

रेडियो और टी.वी. देखने-सुनने वाले लोग भी समूह है। प्रारंभिक अर्थ में समूह व्यक्तियों की एक इकाई है जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं। उदाहरण के लिये, किसी जंगल में वृक्षों का जो झुरमुट है, वह समूह है, इसी तरह गली के नुक्कड़ पर बसे हुए मकान समूह है या हवाई अड्डे पर पड़े हुए हवाई जहाज समूह बना देते है। ये सब समूह बेजान है, एक प्रकार के समुच्चय है। समूह सामाजिक समूह तब बनते है जब उनमें अन्त:क्रिया प्रारम्भ होती है। समूह की मूल आवश्यकता अन्त:क्रिया है।

बोगार्डस कहते हैं : एक सामाजिक समूह में कई व्यक्ति होते हैं – दो या अधिक। इन व्यक्तियों का ध्यान कुछ सामान्य लक्ष्णों की ओर होता है। ये लक्ष्य एक दूसरे को प्रेरित करते हैं। इन सदस्यों में एक सामान्य निष्ठा होती है और ये सदस्य एक जैसी गतिविधियों में अपनी भागीदारी करते है। बोगार्डस ने समूहों के कई प्रकार बताये हैं। इन प्रकारों का आधार समूह द्वारा की जाने वाली गतिविधियाँ हैं। समूहों की लम्बी तालिका में वे परिवार, समुदाय, व्यवसाय, शिक्षा, राष्ट्र आदि को सम्मिलित करते हैं। बोगार्डस अपनी पुस्तक में बार-बार आग्रहपूर्वक कहते हैं कि समूह कभी भी स्थित नहीं होता, उसमें गतिशीलता होती है और इससे आगे इसकी गतिविधियों में परिवर्तन आता है और इसका स्वरूप भी बदलता रहता है। कभी-कभी लगता है कि जैसे समूह स्थिर हो गया है, चलते हुए उसके पाँव थम गये से लगते है और कभी ऐसा भी लगता है कि जैसे समूह सरपट गति से दौड़ता जा रहा है। यह सब भ्रम जाल है। वास्तविकता यह है कि समूह किसी तालाब के पानी की तरह बंधा हुआ नहीं रहता। उसमें गतिशीलता बराबर रहती है। कभी यह गतिशीलता बहुत धीमी होती है, कभी मध्यम और कभी-कभार बहुत तेज। आगबर्न और निमकॉफ पुरानी पीढ़ी के पाठ्यपुस्तक लेखक हैं। उन्होंने समूह की परिभाषा बहुत ही सामान्य रूप में रखी हैं :

जब कभी भी दो या अधिक व्यक्ति एकत्र होते हैं, और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तो वे एक सामाजिक समूह का निर्माण करते हैं।

रोबर्ट मर्टन ने सामाजिक समूह की अवधारणा को संशोधित रूप में रखा है। वे बोगार्डस द्वारा की गयी समूह की परिभाषा से एकदम असहमत है। उनका तर्क है कि सामाजिक समूह की किसी भी परिभाषा में अनिवार्य तत्व अन्त:क्रिया है। समूह के सदस्य कितने ही क्यों न हों जब तक उनमें अन्त:क्रिया नहीं होती, वे समूह नहीं बनाते। बोगार्डस प्रजाति को एक समूह मानते हैं। कॉकेशियन प्रजाति की जनसंख्या असीमित है और रुचिकर बात यह है कि इस नस्ल के लोग न तो दूसरे को जानते है और न ही उनमें कोई नियमित अन्त:क्रिया है। ऐसी अवस्था में मर्टन प्रजाति या इसी तरह राष्ट्र को एक समूह नहीं मानते। वास्तव में मर्टन ने सामाजिक समूह की परिभाषा अपने संदर्भ समूह सिद्धांत की पृष्ठभूमि में दी है। उनका कहना है कि समूह एकत्रीकरण नहीं है। प्रजाति और राष्ट्र तो व्यक्तियों के एकत्रीकरण है। इन व्यक्तियों में पारस्परिक अन्त:क्रियाएँ नहीं होती। अत: सामाजिक समूह मर्टन के अनुसार एकत्रीकरण तो है लेकिन इसके अतिरिक्त सदस्यों में अनत:क्रिया होती है, ''हम एक ही समूह के सदस्य है,'' हम सुदृढ़ता की भावना भी रखते हैं, आदि भी इसकी आवश्यकताएँ है। इन सदस्यों में मानदण्ड और मूल्य भी एक समान होते हैं।

वास्तविकता यह है कि हाल में समूह की व्याख्या जिस तरह हुई है इससे लगता है कि यह अवधारणा अपनी टूटन अवस्था पर आ गयी है। पिछले तीन-चार दशकों में समाजशास्त्रीय अवधारणाओं में बड़ा फेरबदल आया है। जब अवधारणाएँ संशोधित होती है या कभी-कभार आनुभाविकता से सत्यापित नहीं होती तो वे अतीत के गर्त में खो जाती है। नयी अवधारणाएँ नये सिद्धान्तों को जन्म देती हैं। सामाजिक समूह की अवधारणा के साथ भी कुछ ऐसा ही गुजरा है।

मर्टन ने समूह की जो नयी संशोधित व्याख्या की है, उसके अनुसार (1) समूह में दो या उससे अधिक सदस्य होते है; (2) समूह

में अन्त:क्रियाओं का होना आवश्यक है और ये अन्त:क्रियाएँ निरन्तर चलती रहती है। (3) समूह की एक ओर अनिवार्यता समूह के सदस्यों के बीच में हम की भावना पर्याप्त रूपी से पायी जाती है। हम की भावना के दो पहलु है। पहला तो यह है कि व्यक्ति अपनी पहचान उस समूह से करता है जिसका वह सदस्य है और दूसरा समूह के लोग अपने सदस्यों को अपना समझते है। अन्य शब्दों में व्यक्ति की पहचान समूह से है और समूह की पहचान व्यक्ति से।

मटर्न का आग्रह है कि समूह में अपनी सदस्यों के लिए एकता की भावना होती है। समूह में एकीकरण जितना अधिक होगा, समूह उतना ही सुदृढ़ होगा। समूह के एकीकरण के इन बिन्दुओं पर मर्टन जोर देते हैं :

समूह में एकीकरण की भावना तब शक्तिशाली बनती है। जब समूह के सदस्य इस बात का अनुभव करते है कि समूह को बचाये रखना उनके कल्याण के लिए आवश्यक है।

समूह का एकीकरण इस तथ्य पर निर्भर है कि समूह के प्रत्येक सदस्य के उद्देश्यों की उपलब्धि में अपने योगदान और अपनी उपलब्धि की भावना से चेतना के स्तर पर जुड़ा रहता है।

समूह की एकता के लिए यह भी आवश्यक है कि समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ और वैयक्तिक हों। पारस्परिक प्रोत्साहन और प्रशंसा के शब्द सदस्यों के बीच में होने अनिवार्य है।

समूह का एकीकरण और अधिक सुदृढ़ होता है, जब समूह के उद्देश्य आसानी से प्रापत न हो और उनकी प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करना पड़े।

समूह की एकता का एक और आधार भी है जब समूह के सदस्य संगीत, अनुष्ठान, पदवी, नारों आदि के प्रतीकों द्वारा बार-बार सदस्यों को बांधे रखें।

समूह के एकीकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि सदस्यों को समूह की परम्पराओं, उपलब्धियों और उच्चता का बराबर ज्ञान दिया जायें।

पिछले पृष्ठों में हमने समूह की व्याख्या वृहत् रूप में की है। यह निश्चित है कि सभी विचारकों ने इन अवधारणा को समाजशास्त्र की बुनियादी अवधारणा कहा है। इस शताब्दी के पाँचवे दशक में समूह की परिभाषा बहुत लचली थी। हाल में इस अवधारणा को आनुभाविक अध्ययनों की उपलब्धियों के आधार पर अधिक सशक्त बनाया गया है। विवाद होते हुए भी आज यह निश्चित रूप से कहा जा रहा है कि किसी भी समूह के लिए कुछ निश्चित तत्वों का होना आवश्यक है। ये निश्चित तत्व की समूह की विशेषताएँ है। अब हम इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख करेंगे।

समूह की विशेषताएँ

एक से अधिक सदस्य सदस्यों की बहुलता : कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही महान क्यों न हों, समूह नही बनाता। समूह के लिए कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिए। अधिकतम सदस्यों की संख्या वहाँ तक सीमित है जहाँ तक सदस्यों के बीच में किसी न किसी तरह की अन्त:क्रिया सम्भव हो।

सम्पर्क और अन्त:क्रिया : हमने कहा है कि समुच्चय यानी एकाधिक व्यक्तियों का जमावड़ा समूह नहीं बनता। समूह के लिए आवश्यक है कि व्यक्तियों में पारस्परिक सम्पर्क हों और उनके बीच में अन्त:क्रियाएँ हों। मर्टन अन्त:क्रियाओं पर सबसे अधिक जोर देते हैं। निश्चित रूप से अन्त:क्रियाएँ समूह की प्राणवायु है।

पारस्परिकता की चेतना : समूहों के सदस्यों में यह चेतना होनी चाहिए कि उनके समूह के सदस्य उनके ही भाई-बन्धु है। हम सब एक की आंगन की उपज है, यह चेतना समूह के लिए आवश्यक है। समूह के प्रति इस चेतना को कार्ल माक्र्स ने अधिक ताकत के साथ रखा है। मजदूर संघ का सदस्य यह जानता है कि अन्ततोगत्वा वो मजदूर है उसकी पहचान एक मजदूर की ही पहचान है। माक्र्स इसके लिए वर्ग चेतना की अवधारणा को काम में लाते हैं।

अन्त:क्रिया करने वाले लोगों में अपने को एक ईकाई समझने की भावना : समूह का सदस्य अपनी अस्मिता को समूह के साथ जोड़ता है। वो यह समझता है कि समूह से पृथक उसकी न कोई पहचान है और न कोई अस्तित्व। साधारण शब्दों में, व्यक्ति की पहचान उसके समूह से है जिसका वह सदस्य है और दूसरी ओर समूह की पहचान उसके सदस्यों से हैं। दोनों का अस्तित्व पारस्परिक पहचान पर निर्भर है।

समान लक्ष्य : कोई भी व्यक्ति किसी भी समूह का सदस्य समान लक्ष्णों के कारण बनता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है जब समूह के लक्ष्य अपने आप सदस्य के लक्ष्य बन जाते है। परिवार का सदस्य या तो जन्म से बनता है या विवाह से। ऐसी अवस्था में जन्म के बाद या विवाह के उपरान्त सदस्य के लक्ष्य समूह के साथ जुड़ जाते है। जब तक सदस्य का समूह लक्ष्यों के साथ में तालमेल नहीं बैठता, व्यक्ति की सदस्यता अप्रासंगिक बन जाती है।

समान मानदण्ड : वस्तुतत: लक्ष्य साध्य होते हैं और मानदण्ड साधन। साध्य और साधन समूह के अनिवार्य तत्व है। ऐसी स्थिति में जब व्यक्ति साध्यों यानि लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समूह का सदस्य बनता है तो परिणामस्वरूप उसके साधन यानि मानदण्ड भी एक जैसे होते हैं। यदि परिवार उच्च व तकनीकी शिक्षा को अपने सदस्यों की समृद्धि के लिए स्वीकार करता है तो निश्चित रूप से सदस्य भी ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के मानदण्डों को स्वीकार करेंगे।

समान मूल्य : मानदण्ड का ऊंचा स्तर मूल्य होते हैं। इस दृष्टि से जब प्रत्येक समूह के मानदण्ड होते है तब उसके कुछ मूल्य भी होते हैं। समूह के सदस्यों का यह प्रयास होता है कि वे अपने निर्धारित मूल्यों को प्राप्त कर सकें।

समूह की परिभाषा उसके अर्थ और लक्षणों की व्याख्या अधूरी होगी। अगर हम यह याद न दिलायें कि आज के औद्योगिक और पूँजीवादी समाज में समूह का एक वृहत् स्वरूप भी हमारे सामने है और यह स्वरूप औपचारिक और विशाल संगठनों का है। आधुनिक और उत्तर आधुनिक समाजों का, जिनमें यूरोप व अमरीका जैसे देश सम्मिलित हैं, लघु समूहों का युग गुजर गया है। इन देशों में तो परिवार जैसे प्राथमिक समूहों की श्वास भी फूल रही है। यहाँ मनुष्य का लगभग सम्पूर्ण जीवन वृहत् संगठनों में गुजर जाता है। यह तो एशिया, अफ्रीका, और लेटिन अमरीका जैसे देश है जिनमें व्यक्ति का सरोकार सामान्य और छोटे समूहों से होता है। ऐसी स्थिति में समूह के जो लक्षण हमने ऊपर रखे हैं उन्हें वृहत् संगठनों के रूप में भी देखना चाहिए। निश्चित रूप से बोगार्डस के समय की यानी आज से पांच दशक पहले की समूह की अवधारणा बहुत कुछ अप्रासंगिक बन गयी हैं।

एन्थेनी गिडेन्स ने आज के समाज में द्वितीयक समूह के महत्व को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका कहना है कि हमारा दैनिक जीवन – सुबह से लेकर शाम तक – द्वितीयक समूहों के बीच में गुजरता है। एक तरह से हमारी श्वास दर श्वास द्वितीयक समूहों के सदस्यों के साथ निकलती है। सही है गिडेन्स के यह विचार। यूरोप और अमरीका के देशों पर पूरी तरह से लागू होते हैं। हमारे देश में निश्चित रूप से द्वितीयक समूहों का वह स्थान नहीं है जो दूसरे देशों में है। ऐसी स्थिति के होते हुए भी हमारे यहाँ गाँवों का शहरीकरण शीघ्रता से हो रहा है। पंचायत राज और विकास योजनाओं ने अधिकारीतंत्र के जाल को दूर-दूर तक अपनी लपेट में ले लिया है। हर छोटे-बड़े काम के लिए गाँव के आदमी को सरकारी कार्यालय के द्वार को खटखटाना पड़ता है, प्रसूति तथा छोटी-मोटी दवा-दारु के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र के लिए दौड़ना पड़ता है और आवागमन के लिए परिवहन निगम की बसों पर चढ़ाना-उतरना पड़ता है। पान मसाला जिसे वह खाता है, कहीं दूर कानपुर या इन्दौर से आता है। तात्पर्य यह है कि अब गाँव की अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, मनोरंजन आदि समूहों के साथ में जुड़े हुए है। ऐसी अवस्था में द्वितीयक समूहों का क्षेत्र हमारे यहाँ भी बहुत विशाल हो गया है।

प्राथमिक समूह का अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण

प्राथमिक समूह के कई दृष्टान्त है, परिवार, मित्र मण्डली, जनजातीय समाज, पड़ोस और खेल समूह। इनके सदस्यों के बीच में घनिष्ठ अनौपचारिक, प्रत्यक्ष संबंध होते है। इस समूह के सदस्यों में अपनवत् की भावना होती है। भारतीय गाँव एक प्राथमिक समूह है। गाँव के लोग न केवल एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप् से जानते है, वे प्रत्येक परिवार के इतिहास से परिचित होते हैं। इरावतीं कर्वे अपनी पुस्तक दि हिन्दु सोशल ऑरगनाइजेशन में कहती है गाँव में जब कोई अजनबी आती है तो उसकी पहचान अजनबी के रूप में सारा गाँव करता है। गाँव के एक परिवार का दामाद वस्तुत: सम्पूर्ण गाँव का दामाद समझा जाता है। गाँव में उसके प्रवेश पर बहुएँ घूंघट खींच लेती है। एक परिवार का भानजा सम्पूर्ण गाँव का भानजा समझा जाता है। ये सब सम्बन्ध प्राथमिक है। कम से कम आज की भारतीय गाँव में प्राथमिक समूह का महत्व किसी भी अर्थ से कम नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द की कहानी गुल्ली डंडा में जिस खेल समूह का विवरण है, आज भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

कूले ने अपनी पुस्तक सोशल ऑरगेनाजेशन में प्राथमिक समूह की परिभाषा इस तरह की है : प्राथमिक समूहों से मेरा तात्पर्य ऐसे समूहों से है जिनकी विशेषता आमने-सामने के घनिष्ठ साहचर्य और सहयोग के रूप में व्यक्त होती है। ये समूह अनेक अर्थों में प्राथमिक है, परन्तु मुख्यत: इस बात में कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति और आदर्शों के निर्माण में मौलिक है। घनिष्ठ साहचर्य का परिणाम यह होता है कि एक सामान्य सम्पूर्णता में वैयक्तिकताओं का इस प्रकार एकीकरण हो जाता है कि प्राय: कई प्रयोजनों के लिए व्यक्ति का अह्म समूह का सामान्य जीवन और उद्देश्य बन जाता है। इस सम्पूर्णता के वर्णन के लिए अति सरल विधि 'हम' कहना उचित होगा, क्योंकि वह अपने में उस प्रकार की सहानुभूति और पारस्परिक पहचान को समविष्ट करता है। इसके लिए 'हम' की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। किंग्सले डेविस ने अपनी पुस्तक ह्रमन सोसायटी में कूले की उपरोक्त परिभाषा की सुन्दर व्याख्या की है। वे कहते हैं कि प्राथमिक समूह के सदस्य रुबरु मिलते हैं, और हमनें हम की भावना सर्वोपरि होती है। वैसे हम दैनिक जीवन में कई लोगों के साथ रुबरू सम्बन्ध रखते है। व्यापारी और ग्राहक के सम्बन्ध, बैंक के काऊंटर पर बैठे बाबू से सम्पर्क रुबरु या आमने सामने के संबंध होते है लेकिन ये आमने सामने के सम्बन्ध निश्चितरूप से किसी प्राथमिक समूह को नहीं बनाते। ये प्राथमिक समूह तो तब बनते है जब भावात्मक स्तर पर लोग आमने सामने मिलते है। प्राथमिक समूह के लिए गहन संवेगों का होना आवश्यक है। यह भी संभव है कि कभी-कभार द्वितीयक समूहों में भी कई बार प्राथमिक समूह बन जाते हैं। बैकिंग उद्योग में कई लोग काम करते हैं। यह द्वितीयक समूह है पर इसमें मुट्ठी भर लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने आपको प्राथमिक स्तर पर बांध लेते हैं।

यद्यपि डेविस ने कूल की प्राथमिक समूह की परिभाषा की स्टीक व्याख्या की है, पर वे इस तरह की परिभाषा से असहमत भी है। कूले हम की भावना पर अत्यधिक जोर देते हैं। यह डेविस को स्वीकार नहीं है। उनका तो कहना है कि प्राथमिक समूह ही क्यों, सभी समूहों में कम या ज्यादा हम की भावना अवश्य होती है। ऐसी अवस्था में हम की भावना केवल प्राथमिक समूह की ही विशेषता हो, ऐसी नहीं है। भारत एक राष्ट्र है यानी यह द्वितीयक समूह है, इससे हम की भावना अनिवार्य रूप से पायी जाती है – हमारा भारत महान् है, हम सभी भारतवासी है, हमारा राष्ट्र भारतवर्ष है। ये सब मुहावरें हम की भावना से बंध हुए है। ऐसा होते हुए भी भारत राष्ट्र प्राथमिक समूह नहीं है। कूले का तो कहा है कि प्राथमिक समूह है तो वह अपने सदस्यों के सम्पूर्ण जीवन की देखरेख करता है। परिवार अपने सदस्यों का लालन-पालन करता है, शिक्षा-दीक्षा देता है, विवाह सम्पन्न करवाता है। रोगी होने पर सेवा करता है। तात्पर्य यह है कि प्राथमिक समूह अपने सदस्यों के सम्पूर्ण जीवन को अपनी सीमाओं में बांध लेता है।

एलेक्स इंकेल्स ने प्राथमिक समूह की बहुत बड़ी विशेषता आमने-सामने या रुबरु सम्बन्धों को माना है। वे लिखते हैं – प्राथमिक समूह के सदस्यों के सम्बन्ध भी प्राथमिक होते हैं, जिनमें व्यक्ति एक दूसरेसे रुबरु मिलते हैं। इन समूहों में सहयोग और साहचर्य की भावनाएँ इतनी प्रभावपूर्ण होती है कि व्यक्ति का अहं हम की भावना में बदल जाता है।

टॉनिज ने समाज को समूहों का एक जाल कहा है। वे कहते है कि कोई भी समाज समुदायों और समितियों का एक संगठन है। वे समुदाय को जेमैनशाफ्ट कहते है। यदि उनकी परिभाषा की व्याख्या करें तो समुदाय वस्तुत: प्राथमिक समूह है। टॉनिज के अनुसार समुदाय के सदस्यों के बीच में भौतिक निकटता होती है, समुदाय का आकार छोटा होता है और समुदाय के सदस्यों में

सामाजिक सम्बन्ध एक लम्बी अवधि तक चलते रहते हैं। इस भाँति टॉनिज के समुदाय के जो तीन लक्षण – भौतिक निकटता, छोटा आकार और लम्बी अवधि के संबंध – होते हैं वे प्राथमिक समूह में भी पाये जाते है। बोटोमोर ने टॉनिज के जेमैनशाफ्ट यानी समुदाय की व्याख्या की है और वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समुदाय भी एक प्राथमिक समूह है। जे.एल. मोरेना, कुमारी ईवी बारनेट, विलियम वाइट तथा रोबर्ट रेडफील्ड के अध्ययन प्राथमिक समूह के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण है। मोरेना ने छोटे समूहों के अध्ययन करके यह स्थापित किया कि ऐसे अध्ययन सामाजिक प्रयोगों के लिए उपयोगी होते है। कुमारी बारनेट ने पारिवारिक जीवन की एक बहुत ही अच्छी तस्वीर प्रस्तुत की है। वाइट ने अपनी पुस्तक द स्ट्रीट कोरनर सोसाइटी विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। रोबर्ट रेडफील्ड का अध्ययन वस्तुत: गाँवों का अध्ययन है। वे किसी भी गाँव को एक प्राथमिक समूह मानते है।

प्राथमिक समूह के लक्षण

प्राथमिक समूह के जिन लक्ष्णों का उल्लेख करते है वे सब लक्षण प्राथमिक समूह के अध्ययन से निहित है। ये लक्षण इस भाँति है :

एक से अधिक व्यक्ति

कूल ने जब प्रारम्भ में प्राथमिक समूह की परिभाषा दी तब उन्होंने कहा कि समूह के लिए एक से अधिक सदस्यों का होना आवश्यक है। समूह के इस लक्षण के सम्बन्ध के बाद के सभी समाजशात्रियों ने यह एक अनिवार्य लक्षण स्वीकार किया।

संवेग

कूल ने प्राथमिक समूह का दूसरा लक्षण संवेग बताया। ये संवेग हम की भावना को सुदृढ़ करते हैं। जब समूह के सदस्य संवेगात्मक रूप से जुड़े होते हैं तब बिना किसी हानि-लाभ की चिंता करते हुए वे एकजुट होकर रहते है।

पारस्परिक पहचान

कूल ने प्राथमिक समूह की एक और विशेषता पारस्परिक पहचान बतायी है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति की समाज या समुदाय में पहचान अपने परिवार से होती है, अपने आप में वह कुछ नहीं है।

शारीरिक समीपता

किंग्सले डेविस ने प्राथमिक समूह का बहुत बड़ा लक्षण शारीरिक समीपता को माना है। एक ही छत के नीचे रहने के कारण प्राथमिक समूह के सदस्य एक दूसरे को बहुत निकटता से समझते है। येसदस्य एक ही चूल्हे से भोजन करते हैं, एक ही बटुए से खर्च करते हैं और सदस्यों के सम्पूर्ण जीवन का सरोकार प्राथमिक समूह से होता है। रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार सभी में प्राथमिक समूहों के सदस्यों की किसी न किसी प्रकार से भागीदारी होती है।

लघु आकार

डेविस यह भी कहते हैं कि प्राथमिक समूहों का आकार छोटा होता है। छोटे आकार की कोई संख्या निर्धारित नहीं है लेकिन आकार इतना छोटा होना चाहिए कि समूह के सदस्य एक दूसरे से रुबरु हो सके, सम्पर्क कर सकें। नातेदार और समुदाय के सदस्य अन्त:क्रियाओं की दृष्टि से एक दूसरे के निकट होते हैं। इसीलिए डेविस कहते है कि समूह का आकार इतना छोटा होना चाहिए कि सदस्य एक दूसरे से प्रत्यक्ष सम्पर्क बनाए रख सकें। रेडफील्ड ने भी समूह के छोटे आकार को स्वीकार किया है।

सम्बन्धों की अवधि

यह लक्षण भी डेविस ने रखा है। वे कहते है कि प्राथमिक समूह के सदस्यों के सम्बन्ध छोटी अवधि के लिए नहीं होते। संबंध जितने लम्बे समय के लिए होंगे, प्राथमिक समूह उतना ही अधिक सुदृढद्य और सुगठित होगा। गाँव के लोग पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। पीढ़ियाँ भी इसी भाँति परिवार से जुड़ी रहती है। नातेदारों के सम्बन्ध भी लम्बी अवधि तक चलते है।

सुनिश्चितता

रोबर्ट रेडफील्ड ने प्राथमिक समूह के जो लक्षण रखे हैं उनका संदर्भ ग्रामीण समुदाय से है। उन्होंने मेक्सिको के गाँवों का अध्ययन किया है। भारतीय सामाजिक मानवशास्त्री इस शताब्दी के पांचवे दशक में रेडफील्ड के ग्रामीण अध्ययन से बहुत अधिक प्रभावित थे। इस दशक में तो रेडफील्ड की लोकप्रियता हमारे यहाँ चरम सीमा पर थी। रेडफील्ड ने प्राथमिक समूह की बहुत बड़ी विशेषता सुनिश्चितता को बताया है। इसका मतलब यह है कि एक प्राथमिक समूह दूसरे अगणित प्राथमिक समूहों से पृथक होता है। इसकी अपनी एक अलग पहचान होती है। गाँव के संदर्भ में रेडफील्ड कहते है कि यह बहुत निश्चित है कि गाँव यहाँ प्रारम्भ होता है और वहाँ समाप्त होता है। परिवार की भी ऐसी ही पृथकता होती हे। यह परिवार अमुक पीढ़ियों का है, इसका गोत्र यह है और सामान्यतया इस परिवार में इस तरह के व्यवसाय होते रहते है।

सजातीयता

प्राथमिक समूह के सदस्य चाहे पुरूष हो या स्त्री, छोटे हों, या बड़े, समान स्तर के होते हैं। सामान्यतया सोच-विचार, शिक्षा-दीक्षा और धंधे में इन सदस्यों में कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं होता। इसी कारण रेडफील्ड सजातीयता को प्राथमिक समूहों का बहुत बड़ा लक्षण मानते हैं। ग्रामीण समुदाय में तो धंधे की यानी कृषि की सजातीयता बहुत अधिक होती है। बाढ़ आ गयी या सूखा पड़ गया तब गाँव के लोग निराशा की सांस में ऊपर नीचे होने लगते हैं। यह एक प्रकार की मानसिक सजातीयता है।

आत्मनिर्भरता

रेडफील्ड गाँवों के बारे में कहते हैं कि यहाँ आत्मनिर्भरता होती है। पालने से लेकर श्मशान घाट तक की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ गाँव में पूरी हो जाती है। इस अर्थ में प्राथमिक समूह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में आत्मनिर्भर होते हैं। परिवार को देखिए – गरीब हो या अमीर, अपने भाई-बहिनों की सभी आवश्यकताएँ यहाँ पूरी हो जाती है। मित्र मण्डली भी एक ऐसा समूह है जो अपने मित्रों की सहायता सभी आवश्यकताओं में करते हैं। यही हाल नातेदारों का भी है।

हमारे यहाँ गांधीजी जीवनभर यह कहते रहे कि हमें गाँवों को स्वावलम्बी बनाना चाहिये। इससे उनाक तात्पर्य यह था कि गाँव के लोग स्वयं अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें। लोगों को खाने के लिए जितना अनाज चाहिए, गाँव के खेतों में पैदा किया जाना चाहिए। गाँव की अतिरिक्त उपज ही बाजार में पहुँचनी चाहिए। गाँव के कपड़े की आवश्यकता जुलाहे के करधे को करनी चाहिए। बुनियादी शिक्षा गाँव के स्कूल से मिल जानी चाहिए। ये सब तत्व या ऐसे ही तत्व प्राथमिक समुदाय को स्वावलम्बी बनाते है। यह निश्चित है कि आज के विश्वव्यापीकरण और उदारीकरण के युग में आत्मनिर्भरता हाशिये पर आ गयी है, फिर भी कई ऐसी आवश्यकताएँ है, जो सामान्यतया प्राथमिक समूहों के सदस्यों के कारण पूरी हो जाती है। रेडफील्ड ने प्राथमिक समूह के जो लक्षण दिये है उनमें कतिपय लक्षण आधुनिक समाज के लिए अप्रासंगिक हो गये है। स्वयं रेडफील्ड ने इस अप्रांसगिकता की चर्चा की है। ऐसा लगता है कि औद्योगीकरण, शहरीकरण और विश्वव्यापीकरण के कारण समाज में जो तीव्रतम परिर्वतन आ रहे है उनमें प्राथमिक समूहों की भूमिका धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित रूप से सिकुड़ रही है।

द्वितीयक समूह का अर्थ एवं परिभाषा

कूल ने प्राथमिक समूह के विवरण में द्वितीयक समूह की चर्चा नहीं की है। शायद 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में विदेशों में भी द्वितीयक समूहों का अधिक महत्व नहीं था। इसी कारण कूले ने प्राथमिक समूहों की व्याख्या तक ही अपने आपको सीमित रखा। इन देशों में औद्योगीकरण और शहरीकरण के परिणामस्वरूप द्वितीयक समूह महत्वपूर्ण होने लगे हैं। इसी कारण 20वीं शताब्दी के मध्य पहुँचकर द्वितीयक समूह अध्ययन के मुख्य क्षेत्र बन गये। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि समाज जितना अधिक आधुनिक, औद्योगिक और पूँजीवाद होगा, उतने ही अधिक उसमें द्वितीयक समूह होंगे। कूल के बाद के समाजशास्त्रियों ने द्वितीयक समूह की व्याख्या विशत् रूप में की है। यहाँ हम द्वितीयक समूह की कतिपय महत्वपूर्ण

परिभाषाआं का उल्लेख करेंगे।

द्वितीयक समूह का अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण

द्वितीयक समूहों के लक्षण

द्वितीयक समूह लोगों की एक समिति है : ये समूह मध्यम आकार से वृहद आकार के होते है। इनमें सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी होती है। इसी कारण लोग एक दूसरे को जानते भी नहीं है। इन द्वितीयक समूहों को समिति इसलिए कहते हैं कि इनकी स्थापना सोच समझकर विधिवत् रूप से की जाती है। द्वितीयक समूहों के उदाहरण में अधिकारीतंत्र, स्वयं सेवी संस्थाएँ, व्यावसायिक संगठन आदि सम्मिलित है।

अवैयक्तिक सम्बन्ध : द्वितीयक समूह के सदस्य एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते। बैंक के काउन्टर पर वह व्यक्ति जो चेक लेता है, या डाकघर में जो बाबू टिकट देता है, वह कौन सी जाति-बिरादरी का है, कहाँ का रहने वाला है, विवाहित या अविवाहित है, इससे हमें कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। हमारा उद्देश्य तो चेक का धन या डाक टिकट लेना है। तात्पर्य हुआ, द्वितीयक समूह के सदस्यों के साथ हमारे संबंध किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर ही होते हैं। इससे आगे संबंधी हमारा कोई सरोकार नहीं होता।

सम्बन्धों का आधार संविदा होता है : द्वितीयक समूह के सदस्यों के साथ लम्बी अवधि तक हमारे संबंध होते है। बाजार का कामकाज बैंक के सम्बन्धों के बिना नहीं हो सकता। चिकित्सालय या सेवार्थ संस्थाओं के द्वितीयक संगठनों के साथ भी हमारे सम्बन्ध निश्चित नियमों के अनुसार होते है। कोई किसी पर कृपा नहीं करता।

औपचारिक सम्बन्ध : द्वितीयक समूहों में लोगों के साथ हमारे सम्पर्क वस्तुत: प्रस्थिति और भूमिका से जुड़े होते हैं। किसी अमुक प्रस्थिति में कौन सा व्यक्ति काम करता है, इस व्यक्ति से हमें कोई मतलब नहीं। आज इस प्रस्थिति में महेश काम करता है, कल वह चला जाता है और उसके स्थान पर सुरेश आ जाता है। हमें महेश व सुरेश से कोई तात्पर्य नहीं है। हमारा संबंध तो उस प्रस्थिति के साथ है, जिस पर इन नामों के लोग काम करते थे। अत: द्वितीयक समूह में हमारे सम्पर्कों का उपागम हर स्थिति में औपचारिक ही होता है।

निश्चित उद्देश्य : द्वितीयक समूह में व्यक्ति के जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। प्रत्येक संगठन के कुछ सीमित और निश्चित लक्ष्य होते हैं। ये संगठन इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ही काम करते है, इनसे आगे नहीं। अत: जहाँ कहीं हमारा संगठन से वास्ता पड़ता है, तो हमारे संबंध कुछ सीमित क्षेत्रों में ही होते है। चिकित्साल्य हमें बीमारी का निदान तो देगा, लेकिन यदि हम इससे हमारे पहनने के कपड़े मांगें तो इस आवश्यकता की पूर्ति का काम चिकित्सालय के क्षेत्र से बाहर है।

संविदा के उल्लंघन पर दण्ड : हम आग्रहपूर्वक कह रहे है कि द्वितीयक समूह संविदा की सीमा में काम करते है। यदि ये समूह संविदा की शर्तों को नहीं मानते तो इसका खामियाजा उन्हें पंचों या अदालत के माध्यम से भोगना पड़ेगा। जब बीमारोधक को उसकी निश्चित धनराशि नहीं मिलती, या उसके भुगतान में अड़चने आती है तो दोनों के लिए अदालत खुली हैं। संविदा समूहों के सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करती है।

संदर्भ समूह एवं अर्थ समूह क्या है ?

व्यक्ति अपने इर्द-गिर्द कई समूहों से घिरा रहता है। ये समूह या तो प्राथमिक है या द्वितीयक। कुछ समूहों का वह सदस्य होता है कुछ का नहीं। कुछ समूहों को वह अच्छा मानता है और उनके मानदण्डों को स्वीकार करता है, कुछ समूहों के मानदण्डों की वह निन्दा करता है। दिन-प्रतिदिन के जीवन में ऐसे कई समूहों का सरोकार व्यक्ति को होता है। देखिये, उसके परिवार के तौर-तरीके उसे पंसद नहीं है। यह क्या, सुबह के आठ बज गए हैं और सब सो रहे हैं। परिवार का कोई भी व्यक्ति स्वयं अपना काम नहीं करता। दिनभर बच्चे हा-हू करते रहते हैं और बड़े एक दूसरे के पाँव खींचते रहते है। रुचिकर बात यह है कि व्यक्ति जिस समूह का सदस्य है उसी की वह आलोचना करता है। दूसरी ओर, पड़ोस का परिवार है, एकदम साफ सुथरा। जल्दी सुबह उठकर सभी काम में जुट जाते हैं और पूरा दिन पूरी निष्ठा के साथ गुजर जाता है। इस परिवार का व्यक्ति सदस्य नहीं हैं, फिर भी इसकी प्रशंसा करने में वह थकता नहीं। इस तरह का दृष्टान्त इस तथ्य को उजागर करता है कि व्यक्ति जिस समूह का सदस्य है, आवश्यक नहीं है कि उसकी सराहना करें। जिसका सदस्य नहीं है उसकी प्रशंसा भी कर सकता है, यह सब समूहों का अपने समूह की तुलना में संदर्भ है। बहुत थोड़े से संदर्भ समूह का अर्थ उन समूहों से है जो व्यक्ति के संदर्भ के बिन्दु होते हैं, जिनकी ओर व्यक्ति उन्मुख होता है और उसके मूल्यांकन, पृवत्ति तथा व्यवहार को प्रभावित करते हैं। संदर्भ समूह की अवधारणा रोबर्ट मर्टन ने दी है। विशत् रूप में इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने अपनी पुस्तक सोश्यल थ्योरी एण्ड सोश्यल स्ट्रक्चर में की है। पुस्तक में रखने से पहले इस सिद्धान्त की चर्चा मर्टन ने कई फुटकर निबन्धों में भी की है। मर्टन का कथन है कि व्यक्ति पर एक तो प्राथमिक सदस्यता और अन्तर्समूहों का प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर द्वितीयक, अ-सदस्यता और बाह्म समूह भी उसके व्यवहाों और प्रवृत्तियों को प्रभावित करते है। वे समूह जिनके साथ अपनत्व, निकटता और 'हम' की भावना जुटी रहती है। पहली श्रेणी के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं, जो समूह दूसरे हैं, जिनसे दूरी है वे दूसरी श्रेणी में आते है। पहली श्रेणी के समूह की संख्या कम और दूसरी श्रेणी की अधिक होती है। व्यक्ति अपने आदर्श, मूल्य, विश्वास, विचारधारा, और व्यवसाय की खोज में जिन समूहों की ओर उन्मुख होता है, उन्हें संदर्भ समूहों की संज्ञा दी जाती है।

संदर्भ समूह की अवधारणा

यह सामान्य बात है कि जब कभी कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के समूहों के साथ अन्त:क्रिया करता है तो ये क्रियाएँ शून्य में नहीं रहती। क्रियाओं को घेरे हुए सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण होता है। बिना किसी संदर्भ के न तो क्रियाएँ हो सकती है, और न ही उन्हें समझा जा सकता है। व्यिक्तों के इर्द-गिर्द जो सामाजिक पर्यावरण होता है, समूह होते हैं, उनमें व्यक्ति कुछ का सदस्य होता है और कुछ का नहीं।मर्टन का कहना है कि किसी समूह का सदस्य होकर भी व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्य होने की अभिलाषा रखता है। जब वह दूसरे समूह या उसके सदस्यों के व्यवहारों का अनुकरण करता है तो यह उसका संदर्भ समूह व्यवहार है। व्यक्ति को ऐसा लगता है कि जिस वर्ग या समूह का वह सदस्य नहीं होता उसमें कुछ ऐसी सुविधाएँ दिखाई देती है, जो उसके समूह में नहीं होता, वह दूसरे समूह के मानक व मूल्यों को अपना लेता है। यह वह स्थिति है जिसमें वह गैर-सदस्य समूह के संदर्भ को अपने व्यवहार का आधार बनाता है। मर्टन ने संदर्भ समूह की परिभाषा इस भाँति की है :सामान्यत: संदर्भ समूह सिद्धान्त का उद्देश्य मूल्यांकन तथा आलोचना की उन प्रक्रियाओं के निर्धारिकों को व्यवस्थित करता है जिनके द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों या समूहों के मूल्यों या मानदण्डों को तुलनात्मक संदर्भ के रूप में स्वीकार या ग्रहण करता है।

अर्थ समूह

यदि किसी तरह समाज का पोस्टामार्टम करने का अवसर मिलें तो हमें इसके अन्तर्गत समाज की संरचना और उसे सामाजिक समूह देखने को मिलेंगे। वास्तव में, समाज की जो भी जनसंख्या होती है, वह विभिन्न समूहों में बिखरी हुई होती है। निश्चित रूप से समाज में कई प्रकार के समूह देखने को मिलते है – प्राथमिक और द्वितीयक। कुछ ऐसे समूह भी होते हैं जो विशुद्ध रूप से

प्राथमिक समूह भी कहें जा सकते है और न ही उन्हें द्वितीयक समूह कहा जा सकता है। ऐसे समूहों को कुछ समाजशास्त्रियों ने अर्ध समूह का दर्जा दिया है। पिछले पृष्ठों में हमने वृहत् रूप से समूह को परिभाषित किया है। हमने कहा है कि सामाजिक समूह में सदस्यों के बीच में निश्चित सम्बन्ध होते है। दूसरा, समूह के सदस्य यह भी जानते है कि वे अमुक समूह के सदस्य है और इस समूह की पहचान कतिपय प्रतीकों के माध्यम से होती है। थोड़े शब्दों में कहा जाना चाहिये कि समूह में कोई न कोई संरचना अवश्य होती है। यह संरचना पूरी तरह से सम्बद्ध हो, यह आवश्यक नहीं है। दूसरा, समूह के सदस्य नियम-उपनियम के माध्यम से परस्पर जुड़े होते हैं। तीसरा, समूह के सदस्यों का जुड़ाव के आधार संवेगात्मक होता है। बोटामोर का तो कहना है कि सदस्यों में पाये जाने वाले ये लक्षण वस्तुत:समाज को बनाते हैं।

बोटोमोर ने अर्थ समूहों की थोड़ी विस्तृत व्याख्या की है। नकारात्मक रूप से अर्ध समूह वे है जो न तो प्राथमिक समूह है और न द्वितीयक। इसका मतलब यह हुआ है कि बोटोमोर के अनुसार, अर्थ समूह वे है जिनमें समुच्चय होता है लेकिन किसी भी तरह की संरचना और संगठन नहीं होत। अन्य शब्दों में, अर्ध समूहों में एक से अधिक व्यक्ति होते हैं लेकिन इन व्यक्तियों के बीच में कोई अन्त:क्रियाएँ नहीं होती, निश्चित संगठन नहीं होता। वास्तव में प्राथमिक समूह के सदस्यों में एक दूसरे के िलाए जो संवेगात्मक होती है वह अर्ध समूहों में नहीं होती। बोटोमोर में संरचना और संगठनों का कोई ज्ञान नहीं होता। महानगरों और औद्योगिक समाजों में अर्ध समूह बहुतायत रूप से पाये जाते है।